हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परंपरा में तवाइफ़ों का योगदान

पंकज पराशर

...हालाँकि इस मज़मून में मैं बात तो सीधे ज़ोहराबाई आगरेवाली की ज़िंदगी से शुरू करना चाहता था, लेकिन शुरुआत चूँकि मैंने एक 'हालाँकि' से कर दी है, तो मेहरबानी करके ज़ोहराबाई आगरेवाली की दास्तान सुनने से पहले इस 'हालाँकि' का क़िस्सा सुन लीजै. उसके बाद हम ज़ोहराबाई के तत्कालीन सामाजिक हालात की चर्चा भी करेंगे. जैसे पुराने लखनऊ में नवाब वाज़िद अली शाह 'इंदर सभा' शुरू करने से पहले माहौल बनाते थे. पारसी थियेटर के आग़ा हश्र कश्मीरी और नारायण प्रसाद 'बेताब' नाटक की शुरुआत से पहले सामूहिक मंगलाचरण से पहले ही दिलकश संगीत से समाँ बाँध देते थे. उसी तरह जैसे 18 दिसंबर, 1887 को सारण के कुतुबपुर दियारा में दलसिंगार ठाकुर के घर जन्मे भिखारी ठाकुर जब 'बिदेसिया', 'बेटी-बेचवा' और 'गबरघिचोर' खेलने जाते थे, तो नाच शुरू करने से पहले 'लहरा' बजाकर जबर्दस्त फुरफुरी पैदा कर देते थे! बहरहाल, क़िस्सा-ए-ज़ोहराबाई से पहले हमारे-आपके बीच जब यह कमबख़्त 'हालाँकि' आ ही गया है, तो कुछ और 'हालाँकियों' पर भी एक नज़र डालते हुए चलना ग़ैर-मुनासिब न होगा! हिंदुस्तान की तारीख़ को जब आप ग़ौर से देखेंगे, तो पाएँगे कि इतिहास में ऐसी बहुतेरी जगहें हैं, जहाँ असली क़िस्से के बराबर इन 'हालाँकियों' ने अहम किरदार अदा किया है. हिंदुस्तान की तारीख़ को बदल देने की हैसियत का एहसास कराया है. 23 जून, 1757 को बंगाल के नदिया जिले में गंगा नदी के किनारे 'पलाशी' *(पलासी या प्लासी नहीं, क्योंकि पलाश के पेड़ों के सघन वन वाला इलाका होने के कारण इस जगह को पलाशी कहा जाता था)* की लड़ाई हुई थी, तो लॉर्ड रॉबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में ईस्ट इंडिया कंपनी ने नवाब सिराजुद्दौला को हरा दिया, 'हालाँकि' सिराजुदौला के पास अठारह हजार सिपाही थे और अँगरेजों के पास थी महज़ तीन सौ सिपाहियों की सेना!

ज़ोहराबाई के बारे में सोचते हुए मुझे शहर इलाहाबाद से पटना तशरीफ़ लेकर गई 'बाई जी' अल्लाजिलाई की याद बारहा आई. जो मौसीक़ी आज इंटरनेट की मेहरबानी से 'यू-ट्यूब' और अन्य जगहों पर उपलब्ध है, उसका विकास किन-किन दुश्वारियों, किन लोगों की ज़िद और जुनून की वज़ह से मुमकिन हो पाया, यह जानना भी ख़ासा दिलचस्प है! हमें मालूम है कि दुनिया की तमाम सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुई और नदियों की वज़ह से ही सैकड़ों साल तक उनका वज़ूद बना रहा. दुनिया की कोई भी सभ्यता हो, मसलन सिंधु, गंगा, दजला-फरात, नील या ह्वांगहो, वह नदियों की घाटियों में ही पनपी और विकसित हुई. शहर दरभंगा बागमती नदी के किनारे बसा हुआ एक ऐसा शहर है, जो इतिहास में मधुबनी पेंटिंग के साथ-साथ कला-संस्कृति के केंद्र के रूप में मशहूर रहा. दरभंगा राजघराने में संगीत और नृत्य के एक-से-एक कद्रदान हुए. सन् 1700 ईस्वी में जब दरभंगा रियासत की राजगद्दी पर राजा राघव सिंह आसीन हुए, तो दरभंगा हिंदुस्तानी शास्त्रीय

संगीत के एक बड़े केंद्र के रूप में उभरकर सामने आया और उनके बाद आए शासकों के समय में भी यह निरंतरता बनी रही. महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह और उनके निधन के बाद उनके अनुज रामेश्वर सिंह भी हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के बड़े कद्रदान माने जाते थे. कलाकारों को इनाम-इकराम देने और अपनी दरियादिली के लिए वह देशभर में जाने जाते थे. उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ, गौहर जान, रामचतुर मल्लिक, रामेश्वर पाठक और सियाराम तिवारी जैसे चर्चित संगीतज्ञ इस राजघराने से जुड़े रहे. 21 मार्च, 1916 को बिहार के डुमराँव में जन्मे कमरुद्दीन, जो आगे चलकर भारत रत्न उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ हुए, की ज़िंदगी का एक लंबा अरसा दरभंगा में बीता. शहनाई में बिस्मिल्ला खाँ ने इतना नाम पैदा किया कि उन्हें भारत की आज़ादी के समय तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के सामने शहनाई बजाने का अवसर मिला और सन् 1997 में आज़ादी के पचास साल पूरे होने पर भी संसद भवन में शहनाई बजाने का सम्मान मिला. उनके ख़ानदान में उनके परदादा हुसैनबख़्श खाँ, दादा रसूलबख़्श खाँ, चाचा ग़ाजीबख़्श खाँ और पिता पैगंबरबख़्श खाँ भी अपने ज़माने के नामी शहनाई वादक थे, लेकिन बिस्मिल्ला खाँ-जैसी शोहरत इनमें से किसी को नहीं मिली. उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ भी अपने वाद्य में मुरकी, खटका, मींड आदि ला सकने की अपनी सामर्थ्य का श्रेय बनारस की दो गायिकाओं रसूलनबाई और बतूलनबाई को देते थे.[1]

बात जब रसूलन बाई की निकल ही आई है, तो ज़रा उनकी भी मौसिकी से मोहब्बत की दास्तान भी सुन लीजै. रसूलनबाई का तआल्लुक बनारस के बेहद ग़रीब घराने से था. उनके पास अगर कोई दौलत थी, तो वह थी अपनी माँ से मिली हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की विरासत. संगीत का जो ज़रा भी जानकार होगा, वह रसूलनबाई की ठुमरी सुनकर यह सोचने पर मज़बूर हो जाएगा कि रसूलन ठुमरी को गाती थी या ठुमरी ख़ुद ही ख़ुदा की नेमत की तरह उनके गले में उतरती थी! आज़ादी मिलने के साथ जब देश का बँटवारा हुआ, तो आम मुसलमानों के सामने हिंदुस्तान में ही रहने या पाकिस्तान जाने का सवाल पैदा हुआ. बनारस से भी बहुत सारे लोग पाकिस्तान जाने की तैयारी करने लगे. रसूलनबाई के शौहर सुलेमान मियाँ भी पाकिस्तान जाने के लिए नीयत और सामान दोनों बाँधने लगे. रसूलन के पति सुलेमान को नये मुल्क पाकिस्तान के आकर्षण ने अपनी तरफ़ खींच लिया था, जबकि रसूलनबाई को नये बने मुल्क पाकिस्तान से ज़्यादा अपने शहर बनारस से लगाव था. रसूलन बी ने सुलेमान मियाँ को समझाने कि बारहा कोशिशें की, कि नये मुल्क में वहाँ हमारा कौन इस्तकबाल करने को बैठा है? न घर, न घाट, न वहाँ कोई जान-पहचान, जबकि बनारस हमारा अपना आबा-ए-वतन है! वहाँ पाकिस्तान में हमारा कौन है? पर सुलेमान मियाँ चूँकि सफर के लिए नीयत और सामान बाँध चुके थे, लिहाजा उनके ऊपर रसूलन बाई की दलीलों का कोई असर नहीं हुआ. वे नहीं माने. वे नहीं माने तो रसूलनबाई भी नहीं मानी. रसूलन ने अपने शौहर सुलेमान मियाँ के साथ पाकिस्तान जाने से इनकार दिया और बनारस में अकेले ही रहना तय किया. तब रसूलनबाई को बनारस में ही छोड़कर सुलेमान मियाँ अकेले ही पाकिस्तान के निकल गए. यह जानना बेहद तक़लीफदेह है कि जिस बनारस के लिए रसूलन बाई ने अपने पति को भी छोड़ दिया, उस बनारस ने उनकी कोई कद्र नहीं की. आख़िरी समय में उन्हें दो वक़्त की रोटी के लिए भी काफी जिल्लत उठानी पड़ी.

आज़ादी के बाद कुछ लोगों ने बनारस की तवाइफ़ों का सामाजिक बहिष्कार करना शुरू किया. उनका कहना था कि इनकी उपस्थिति से बनारस की शुचिता को ख़तरा है. उसके बाद बनारस में उनकी मौज़ूदगी पर ही सवाल उठाने लगे. इसके बाद शास्त्रीय संगीत के रसिकों ने कोठों का रुख़ करना ही छोड़ दिया. फिर तो ग़ुरबत और मुफ़लिसी की वो शाम आयी, जिसकी फिर कभी सुबह हुई नहीं हुई! नौबत ये आ गई कि दो वक़्त की रोटी जुटाने के लिए रसूलनबाई फुटपाथ पर कुछ–कुछ बेचा करती थीं. आकाशवाणी इलाहाबाद उनकी गायी हुई ठुमरियों को बजाता तो था, लेकिन उसी आकाशवाणी की सड़कों पर बेघर-बेसहारा फिरतीं हुई रसूलनबाई के हालात से बेख़बर था. आकाशवाणी से जब रसूलन बाई अपने नाम के साथ 'बाई' का तख़ल्लुस सुनतीं, तो उनका दर्द आख़िर छलक ही आता. वह कहतीं, 'बाकी सब 'बाई' तो देवी बन गई, एक मैं ही 'बाई' रह गई!' रसूलन बाई की एक यादगार ठुमरी है, 'लागत करेजवा में चोट, फूल गेंदवा ना मारो'. घायल हृदय का वास्ता देकर, इज़हार-ए-मुहब्बत के नाज़ुक एहसास की उम्मीद जतानेवाली इस ठुमरी का एक हर्फ़ वक़्त के साथ बदल दिया गया. 'फूल गेंदवा ना मारो, लागत जोबनवां में चोट' लफ़्ज़ में ये बदलाव उन हालात पर सांकेतिक कटाक्ष है, जिनके तहत रसूलनबाई को ग़ुरबत की ज़िंदगी गुजारनी पड़ी. लोगों की तारीफ़ और 'एक और...एक और' की फरमाइश सुनने की आदी रसूलन को बदलते हिंदुस्तान की संगदिली और बेशर्मी ने बुरी तरह तोड़ दिया.[2] जो नाज़ुकमिज़ाज दिल महफ़िल में बैठे लोगों के टेढ़े बोल निकल से भी घायल हो जाते थे, उस दिल को इतने पत्थरों के चोट सहने पड़ेंगे, ये पाकिस्तान न जाने का फैसला करते हुए न तो रसूलन बाई ने कभी सोचा होगा, न रसूलन की ठुमरी के असल कद्रदानों ने.

सन् 1880 से 1898 तक लक्ष्मीश्वर सिंह दरभंगा ज़मींदार थे. बताते चलें कि ये वही लक्ष्मीश्वर सिंह हैं, जो सन् 1885 में काँग्रेस की स्थापना के समय उसकी पहली बैठक में मौज़ूद थे. इसके बाद कलकत्ते में हुए काँग्रेस के द्वितीय अधिवेशन का पूरा खर्च (2500 रूपये) उन्होंने ही दिया था. सन् 1892 में अँगरेजी हुकूमत की भवें टेढ़ी हो जाने के कारण सन् 1888 में काँग्रेस को इलाहाबाद में अधिवेशन करने के लिए जब कोई जगह नहीं मिल रही थी, तो लक्ष्मीश्वर सिंह ने एक अँगरेज हाकिम का पूरा 'लोथर हाउस' ही ख़रीदकर दे दिया.[3] इन्हीं लक्ष्मीश्वर सिंह के लक्ष्मीश्वर विलास पैलेस में सन् 1887 में जब 'बड़ी मलका जान' की साहिबज़ादी गौहर जान ने महज चौदह बरस की उम्र में अपना पहला गाना पेश किया, तो वहाँ मौज़ूद तमाम लोग गौहर की गायकी के कायल हो गए. उसके बाद वह बाक़ायदा दरभंगा राज से जुड़ गईं. लक्ष्मीश्वर सिंह जब तक जीवित रहे, दरभंगा से गौहर जान सीधे तौर पर जुड़ी रहीं. अपने 56 बरस के जीवन काल में गौहर तीन राजदरबारों से जुड़ीं- दरभंगा, कलकत्ता के मटियाबुर्ज में निर्वासित जीवन जी रहे अवध के नवाब वाज़िदअली शाह और मैसूर के कृष्ण राजा वडियार (चतुर्थ) के राज दरबार से. हिंदुस्तान के भद्र समाज के इन चेहरों से बेख़बर गौहर ने बाद में इस चीज़ को देखा कि उनके दौर का रसिक समाज इन गायिकाओं पर रुपया तो भरपूर लुटाता था, किंतु बड़ी से बड़ी पेशेवर गायिका को राज-समाज में न तो ब्याहता का दर्जा मिलता था और न सम्मानित पुरुष कलाकारों जैसा आदर भरा व्यवहार दिखाता था, ख़ास तौर पर तब, जब उनकी गायकी और यौवन ढलान पर आ जाएँ. बड़ी मलकाजान, जानकीबाई छप्पनछुरी और ज़ोहराबाई आगरेवाली जैसी गायिकाओं की कला के दीवाने

भारत के दोमुँहे भद्र समाज के विपरीत, इनकी असंदिग्ध प्रतिभा के कारण उस दौर के तमाम उस्ताद गायकों के बीच तवाइफ़ों का गहरा सम्मान बना रहा. वे अक्सर संगीत की बारीकियों पर इनसे चर्चा करते और अपनी जानकारियों का आदान-प्रदान किया करते.'[4]

इक हाल में इंसान की बसर हो नहीं सकती
अब रंग तबीयत के बदल जाए तो अच्छा

ये शेर है अपने ज़माने की मशहूर तवाइफ़ बड़ी मलका जान उर्फ एडेलिना विक्टोरिया हेमिंग्स के, जिनके ख़ानदान का तआल्लुक न हिंदुस्तान से था, न हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत से बेपनाह मुहब्बत करने वाली किसी बड़ी तवाइफ़ घराने से, मगर उर्दू अदब और हिंदुस्तानी मौसिक़ी से उनका लगाव बेमिसाल था. वह एक अँगरेज़ औरत थीं, जिनके ख़ानदान का तआल्लुक इंग्लैंड से था. हालाँकि बड़ी मलका जान की बेटी मशहूर तवाइफ़ गौहर जान पर एक मुकम्मल किताब *'माय नेम इज गौहर जान-द लाइफ एंड टाइम्स ऑफ ए म्यूजिशियन'* लिख चुके विक्रम संपत ने अपनी किताब में दावा किया है कि बड़ी मलका जान के ख़ानदान का तआल्लुक आर्मीनिया से था. विक्रम ने जो कहा सो कहा, उनकी इस किताब पर अँगरेज़ी के बड़े अख़बारों और पत्रिकाओं में समीक्षा लिखने वाले नामचीन समीक्षकों यथा साधना रामचंदर, सौम्या तिवारी, विक्रमजीत सिंह रूपराव, रंजानी गोविंद, सविता गौतम, क्रिस ओमावेंग और मिनी पी थॉमस समेत किसी विद्वान ने इस तथ्य पर ग़ौर नहीं किया कि बड़ी मलका जान को किन सुबूतों के आधार पर विक्रम और दीगर लोगों ने बड़ी मलका जान और उनकी बेटी गौहर जान को आर्मेनियाई मूल की कहा है? पिता की तरफ से एडेलिना विक्टोरिया हेमिंग्स उर्फ बड़ी मलका जान के दादा, परदादा और माँ की तरफ से नाना, परनाना किसी का भी जब आर्मीनिया से कोई संबंध ही नहीं था, तो बड़ी मलका जान या उनकी बेटी गौहर जान आख़िर किस बुनियाद पर आर्मेनियाई मूल की हुईं? इंटरनेट पर उनके बारे में जो मालूमात हैं, उन सब में बड़ी मलका जान और उनकी बेटी गौहर जान को आर्मेनियाई मूल का कहा गया है. इस तथ्यहीन और असत्य तथ्य को इंटरनेट पर इतनी बार लिखा/बोला जा चुका है कि है कि अब लोगों ने यह मान लिया है कि वे वाक़ई आर्मेनियाई मूल की ही थीं!

बड़ी मलका जान और उनकी बेटी गौहर जान का आर्मीनिया और 'येओवार्ड' उपनाम से रिश्ता जोड़नेवाले कुछ लोग मुंसिफ कोर्ट, बनारस में बड़ी मलका जान द्वारा दिये गये एक हलफ़नामे (मुकद्दमा नंबर 545, सन् 1889) को उद्धृत करते हैं, जो माखनलाल बनाम गौहर जान था. इसमें बतौर गवाह बड़ी मलका जान ने 26 जून, 1890 को 1873 के एक्ट नंबर 10 के तहत गौरी शंकर नामक चपरासी को अपना हलफ़नामा दिया था. उस वक़्त वहाँ बाबू विपिन बिहारी मुखर्जी मौज़ूद थे. मलका जान ने बयान किया, *'मैं मलका जान, पेशाः तवाइफ़, मोकामः रेसीडेंस मोहल्ला, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता, उम्र 32 साल, साक्षर हूँ और यह बयान करती हैं कि पहले मैं एक ईसाई थी और अब मैं आर्मीनियाई हूँ. जब मैं एक ईसाई थी, तो मेरा नाम एडेलिना विक्टोरिया*

हेमिंग्स था.' यह भ्रम पैदा करने वाला एक विरोधाभासी बयान है. आर्मीनिया के ईसाई भी उसी तरह के ईसाई होते हैं, जैसे ब्रिटेन या किसी अन्य देश के ईसाई होते हैं, लेकिन बड़ी मलका जान ने आर्मीनिया की ईसाई होने को कुछ यूँ बयाँ किया, जैसे वह कोई अलग समुदाय हो. ऐसा कहकर वह कहना क्या चाहती थीं? ऐसा लगता है कि वह जो कह रही थीं, उसके प्रति साकांक्ष नहीं थीं. एडेलिना विक्टोरिया हेमिंग्स कलकत्ता के जिस इलाके में रहती थीं, उस इलाके में बहुत सारे आर्मेनियाई लोग रहते थे, लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि आर्मेनियाई बहुल इलाके में रहने भर से विक्टोरिया हेमिंग्स भी आर्मेनियाई हो गईं. सन् 1876 से 1889 तक जिन लोगों ने अपने मूल धर्म को छोड़कर ईसाइयत को अपनाया, उन तमाम लोगों के बारे में पूरी जानकारी चर्च के रजिस्टरों में बाक़ायदा दर्ज़ की जाती थी और इन रजिस्टरों को पढ़ने के बाद इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि एडेलिना विक्टोरिया हेमिंग्स को आर्मीनियाई चर्च में बपतिस्मा दिया गया था. इसलिए इस बात का कोई वैध सुबूत नहीं मिलता कि वे ख़ुद को ईसाई की जगह आर्मेनियाई कहें.

उन्नीसवीं सदी की तवाइफ़ों में बड़ी मलका जान का नाम बहुत अदब ओ एहतराम से लिया जाता है. बेहद नफ़ीस और क्लासिकल किस्म की उर्दू में लिखनेवाली बड़ी मलका जान ने एक किताब लिखी थी, 'मख़जन-ए-उल्फत ए मल्लिका'. शोध के दौरान मुझे पता चला कि पूरी दुनिया में इस किताब की सिर्फ एक कॉपी महफ़ूज है और वह कॉपी फिलहाल ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन में है. विक्टोरिया हेमिंग्स को गीत-संगीत और नृत्य से जुनून की हद तक लगाव था और वह घंटों रियाज़ में अपना वक़्त बिताया करती थी. इस वज़ह से आईस-फैक्ट्री से थके-माँदे जब विलियम रॉबर्ट घर लौटते, तो घर में गीत-संगीत और नृत्य चल रहा होता. इस वज़ह से पहले तो पति-पत्नी के बीच कहासुनी हुई, फिर उसके बाद झगड़े होने शुरू हो गए. पति-पत्नी बीच दूरियाँ बढ़ने लगीं और दांपत्य-प्रेम में लगातार कमी आती चली गयी. इसी बीच पति-पत्नी के बीच ख़ुर्शीद नामक एक रईस 'वो' का भी प्रवेश हो गया. ख़ुर्शीद से विक्टोरिया की नज़दीकी की एक वज़ह यह भी थी कि ख़ुर्शीद जितना विक्टोरिया को चाहता था, उतना ही उसे विक्टोरिया के संगीत से भी लगाव था. सही वक़्त पर ख़ुर्शीद ने विक्टोरिया के रूप और संगीत दोनों से गहरी मुहब्बत का न सिर्फ़ खुलेआम इज़हार किया, बल्कि कलहपूर्ण वातावरण में रह रही विक्टोरिया हेमिंग्स के जख़्मी दिल पर मुहब्बत का मरहम भी लगाता रहा. बेटी एलिन एंजेलिना जब छह साल की हुई, तो विलियम रॉबर्ट और विक्टोरिया हेमिंग्स की शादीशुदा ज़िंदगी में इतनी कड़वाहटें आ चुकी थी कि दोनों ने तलाक ले लेना ही बेहतर समझा. सन् 1879 में दोनों के बीच आख़िरकार तलाक हो ही गया.

पति से अलग होने के बाद विक्टोरिया हेमिंग्स, बनारस के रईस ख़ुर्शीद से शादी करके आज़मगढ़ से बनारस चली गई. बनारस पहुँचकर विक्टोरिया ने इस्लाम कुबूल करके अपना नाम 'बड़ी मलका जान' रख लिया. अपने नाम में उन्हें 'बड़ी' शब्द इसलिए जोड़ना पड़ा, क्योंकि उस वक़्त हिंदुस्तान में मलका जान नाम की तीन और मशहूर गायिकाएँ मौज़ूद थीं और वे भी मलका जान के नाम से ही जानी जाती थीं. एक थी मलका जान

आगरेवाली, दूसरी थी मुल्क पुखराज की मलका जान और तीसरी थी चुलबुली मलका जान. विक्टोरिया हेमिंग्स इन तीनों मलका जान से चूँकि उम्र में बड़ी थीं, इसलिए अपने नाम में मलका जान से पहले 'बड़ी' जोड़ लेना कतई ग़ैर मुनासिब न था. निकाह के बाद धर्म बदलकर विक्टोरिया से बड़ी मलका जान बनने के बाद उन्होंने बेटी को भी धर्म परिवर्तित करवाकर एलिन एंजेलिना येओवॉर्ड से गौहर जान बना दिया. बड़ी मलका जान उस ज़माने की मशहूर कथक नृत्यांगना और शास्त्रीय संगीत की गायिका थीं. ख़ुर्शीद के साथ निकाह के बाद वे तकरीबन चार सालों तक बनारस में रहीं. कलकत्ता के मटियाबुर्ज में निर्वासित जीवन जी रहे अवध के नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में सन् 1883 में उन्होंने तीन सौ रूपये महीने की मुलाज़मत क़ुबूल कर ली और बनारस से कलकत्ता चली गईं.

सन् 1848 में जब साम्राज्य विस्तार की रणनीति लेकर लॉर्ड डलहौजी हिंदुस्तान का गवर्नर जनरल बनकर आया, तो अगले ही साल 1849 में उसने साजिश करके पंजाब को अँगरेजी राज का हिस्सा बना लिया और महाराजा दिलीप सिंह को पेंशन देकर इंग्लैंड भिजवा दिया. इसके बाद सन् 1856 में अँगरेजों ने अवध के नवाब वाज़िद अली शाह (शासन कालः 13 फरवरी, 1847 से 11 फरवरी, 1856) को भी देश निकाला देकर कलकत्ता के मटियाबुर्ज इलाके में भेज दिया, ताकि बरतानवी हुकूमत को उनकी हरकतों पर नज़र रखने में सहूलियत हो. बरतानवी हाकिमों का फरमान सुनने के बाद नवाब वाज़िद अली शाह अपने परिवार के कुछ सदस्यों और अपनी चार बीवियों के साथ कलकत्ता चले गए. अगले साल 1857 में जब गदर का विद्रोह शुरू हुआ, तो बरतानवी हुकूमत ने एहतियातन नवाब वाज़िद अली शाह को नज़रबंद कर दिया. गदर के विद्रोह को कुचलने के बाद अवध अँगरेजों के कब्ज़े में आ तो गया, मगर सबसे आख़िर में और वो भी लखनऊ शहर में बीस हज़ार लोगों का क़त्ल-ए-आम करने के बाद. इन्हीं नवाब वाज़िद अली शाह ने 'परीख़ाना' नाम से एक किताब लिखी थी, जो उनकी ज़िंदगी की खुली दास्तां तो है ही, यह किताब उन्नीसवीं सदी की लखनवी संस्कृति का कीमती दस्तावेज़ भी है. किताबें पढ़ने और लिखने के वे इतने शौकीन थे कि अपने जीवन काल में 60 से अधिक किताबें लिखीं. इसके अलावा वह कथक के कुशल नर्तक और हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में इतने गहरे धँसे हुए थे कि कई नये राग भी बनाए और आम लोगों के बीच 'ठुमरी' को लोकप्रिय बनाने में उनका बहुत अहम योगदान माना जाता है. लखनऊ से निर्वासित होकर नवाब वाज़िद अली शाह जब कलकत्ता जा रहे थे, तो 'बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए' गाते हुए विदा हुए थे. ठुमरी के माहिर और क़द्रदान इन्हीं नवाब साहब के मटियाबुर्ज स्थित राजदरबार से बड़ी मलका जान जुड़ीं, लेकिन उनके राजदरबार से जुड़ने के महज़ चार साल के भीतर ही नवाब साहब का इंतकाल हो गया.

बड़ी मलका जान कथक की प्रशिक्षित नृत्यांगना तो थी ही, उर्दू कविता और ग़ज़ल गायन में भी उन्हें महारत हासिल थी. वह ध्रुपद, ख़याल से लेकर ठुमरी, होरी, चैती, कजरी और ग़ज़ल सब कुछ गाती थीं. नवाब वाज़िद अली शाह के दरबार से जुड़ने और वहाँ के दीगर रईस क़द्रदानों की बदौलत बड़ी मलका जान ने कलकत्ता (अब

कोलकाता) के 24, चितपुर रोड (वर्तमान में रवीन्द्र सरणी) में चालीस हज़ार रूपये में एक बड़ी-सी कोठी ख़रीद ली. इसी घर में बड़ी मलका जान ने बेटी गौहर जान की नृत्य और संगीत की शिक्षा शुरू करवाई थी. पटियाला के काले खाँ उर्फ 'कालू उस्ताद', रामपुर के उस्ताद वज़ीर खाँ और पटियाला घराने के संस्थापक उस्ताद अली बख़्श (पटियाला घराना के संस्थापक) ने गौहर को हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के गायन की शिक्षा दी. महान् कथक गुरु वृंदादीन महाराज (मशहूर कथक नर्तक बिरजू महाराज के दादा के भाई) से गौहर ने कथक सीखा, सृजनबाई से ध्रुपद और चरनदास से बंगाली कीर्तन की शिक्षा ली. वास्तव में बड़ी मलका जान और उनकी बेटी गौहर जान के पहले शिक्षक उस्ताद इमदाद खाँ साहब थे, जो माँ और बेटी के गायन के दौरान सारंगी बजाया करते थे. बड़ी मलका जान की वह कोठी रईसों, नवाबों और मौसिकी के दीगर कद्रदानों की बदौलत आबाद रहा करती थी. बड़ी मलका जान की बेटी गौहर जान ने कहा था, 'मेरी अम्मी बड़ी मलका जान अपने बचपन की बातें बताते हुए कहती थीं कि उस ज़माने में ठुमरी गानेवालियों को ठुमरी की लय, तान, बोल, कहन, फिरन, ठहराव, अदायगी सीखने के अलावा नाचने की तालीम लेना भी लाज़िमी था. गाने वालियों को पढ़ना-लिखना आता नहीं था, इसलिए वे राग, स्वर, लय, बोल, तान, लफ़्ज़ों को गले और जिस्म में उतारने में सालों लगी रहती थीं. उन्होंने अपने तजुर्बे और रियाज से यह जाना कि राग की सुरावट और लय-ताल को सारंगिये और तबलिये साधने में मदद करते हैं, लेकिन सुर और शब्द के संबंध बनाने में वे कभी मददगार नहीं हो सकते. गाने में किसी लफ़्ज की क्या अहमियत है, क्या मायने हैं, उस गीत का कल्चर क्या है-यह जानना निहायत जरूरी है. यह सब सोच-समझ कर उन्होंने ठुमरी को नया अंदाज़ दिया.'

बड़ी मलका जान और उनकी बेटी गौहर जान के पहले उस्ताद इमदाद खाँ थे, जो माँ और बेटी के गायन के दौरान सारंगी बजाया करते थे.[5] ग़ौहर जान की गायकी का व्यापक असर न सिर्फ हिंदुस्तान के भद्र समाज पर था, बल्कि संगीत के क्षेत्र में नाम और नामा की चाहत रखनेवाली अनेक गायिकाएँ उन्हीं की तरह गाने की हसरत अपने दिल में रखती थीं. इस प्रसंग में अख़्तरीबाई फ़ैज़ाबादी उर्फ बेगम अख़्तर की याद भला किसे न आएगी! बेगम अख़्तर बंबई जाकर फिल्मों में अपना किस्मत आजमाना चाहती थीं, लेकिन जब उन्होंने ग़ौहर जान का गायन सुना, तो फिल्मों में जानने का इरादा छोड़ दिया और अपने आपको पूरी तरह हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के लिए वक़्फ कर दिया. हुआ कुछ यूँ था कि एक बार गौहर जान शहर फ़ैज़ाबाद तशरीफ़ लाईं, जिनकी उन दिनों पूरे हिंदुस्तान में धूम मची हुई थी. इत्तेफ़ाक से वह उस कमरे में गईं, जहाँ 'बिब्बी' उर्फ़ अख़्तरी पढ़ती थीं. बिब्बी ने गौहर का दामन थाम लिया और कहा, 'आप गौहर जान हैं न?' आप ठुमरी गातीं हैं.' गौहर बोलीं, 'क्या तुम भी गाती हो?' बिब्बी ने उन्हें ख़ुसरो का कलाम 'अम्मा मोरे भैया को भेजो सावन आया' गाकर सुनाया. गौहर जान, अख़्तरी से इस कलाम को सुनकर अवाक रह गईं. बोलीं, 'अगर इस बच्ची को सही तालीम मिल गई, तो ये मलिका-ए-ग़ज़ल बनेगी![6] ...और वह वाकई बनीं. चूँकि उनकी वालिदा मुश्तरीबाई भी लखनऊ के नवाबों की दरबारी गायिका थीं, इसलिए घर में पहले से ही मौसिकी का अच्छा माहौल था.

गौहर जान ने महफिलों में गायन से ज़्यादा अपनी रिकार्डिंग के जरिये ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, भजन और तराना दूर-दूर के लोगों तक पहुँचाया. इस वज़ह से उनकी शोहरत इस तेज़ी से फैली कि गौहर बीसवीं सदी के तीन दशकों तक हिंदुस्तान की सबसे महँगी गायिका बनी रहीं. महफिल में गाने का दावत देने के लिए आने वाले क़द्रदानों से जब तक सोने की एक सौ गिन्नियाँ नहीं धरवा लेतीं, तब तक हामी ही नहीं भरती थीं. उस वक़्त के हिंदुस्तान की वह पहली करोड़पति गायिका थीं, जो रानियों की तरह ठाट-बाट से रहती थीं. शाहखर्च ऐसी कि पालतू बिल्ली ने जब बच्चे दिये, तो अपनी कोठी पर एक पार्टी की, जिसमें बीस हज़ार रूपये फूँक दिये. आज क़ीमत आज के हिसाब से तकरीबन नौ करोड़, छह लाख के आसपास इस पार्टी पर उन्होंने खर्च किये थे. कलकत्ता में रहनेवाली वह ऐसी पहली शख़्स थीं, जो चार घोड़ेवाले सुसज्जित बग्घी से चलती थीं. इससे चिढ़कर तत्कालीन वायसराय ने उन पर एक हज़ार रूपये जुर्माना लगाया, जो गौहर ने चुका दिया, मगर वायसराय से डरकर अपनी शाही शौक और शाही जीवन-शैली से कतई समझौता नहीं किया. बचपन में देखी हुई ग़रीबी ने उन्हें इतना व्यावहारिक बना दिया था कि ग़ौहर ने अपनी कमाई से कलकत्ता में कई कोठियाँ और ख़ूब ज़मीन-जायदाद ख़रीदे. जवानी के दिनों में रिश्तेदारों पर ख़ूब पैसा लुटाया, बावज़ूद इसके कि तेरह बरस की उम्र में बलात्कार का दंश भी उसे झेलना पड़ा. इससे बड़ी दर्दनाक बात और क्या होगी कि एक पेशेवर गायिका और 'डांसिंग गर्ल' के तौर पर लोगों की बेपहनाह मुहब्बत हासिल करनेवाली गौहर की ज़िंदगी में शौहर तो आए, लेकिन नसीब में सिवाए धोखा और तन्हाई के और कुछ न आया.

सन् 1904-05 के दौरान गौहर जान की मुलाकात मशहूर गुजराती थियेटर कलाकार अमृत केशव नायक से हुई, जो कि पारसी थे. अमृत केशव नायक से गौहर जान ने गीत-संगीत की बहुत-सी बारीकियाँ सीखीं और सीखने-सिखाने की इस प्रक्रिया में दोनों को एक-दूसरे से प्यार हो गया. दोनों शादी करने को लेकर गंभीर थे, लेकिन कुदरत को शायद कुछ और ही मंज़ूर था. अचानक सन् 1907 में केशव नायक की मौत हो गई और शादी से पहले ही इस प्रेम कहानी का अंत हो गया. इसके बाद अपने से उम्र में काफी छोटे अपने सेक्रेटरी अब्बास के साथ गौहर ने शादी की, लेकिन यह शादी भी कुछ ही वक़्त तक चल पायी. दरअसल अब्बास शुरू से ही उनके प्रति वफ़ादार नहीं था और कुछ ज़्यादा ही चालाक किस्म का आदमी था. गौहर तो उसको अपना शौहर मानकर उसके मोहब्बत में गिरफ़्तार थीं, जबकि अब्बास रूपये-पैसे का ग़बन करने और उनकी जायदाद अपने नाम कराने में मुब्तिला था. दोनों के बीच जब अनबन शुरू हुई, तो तलाक का मुआमला अदालत पहुँचा. कोर्ट-कचहरी के चक्कर में गौहर की जायदाद का बड़ा हिस्सा महँगे वकीलों की फीस देने में बिक गया. माली हालत बेहद ख़राब हो गई. कभी रानियों की तरह ठाट-बाट से रहनेवाली गौहर के सामने फ़ाकाकशी की नौबत आ गई. इसी समय उन्हें मैसूर के राजा कृष्णा वाडियर की ओर से अपने दरबार में आने का दावत मिला. तलाक के मुआमले को लेकर कोर्ट-कचहरी की झंझटों से परेशान हो चुकीं ग़ौहर ने आख़िरकार मैसूर राजदरबार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया. आज़मगढ़, कलकत्ता, बनारस, दरभंगा होते हुए ज़िंदगी के आख़िरी सालों में गौहर मैसूर चली गईं. महज 56 साल की उम्र में 17 जनवरी, 1930 को जब ग़ौहर ने मैसूर में आख़िरी साँस ली, तो वह बेहद अकेली और बीमार थीं. उनके आसपास कहने को कोई अपना नहीं था. अपने ज़माने की सुपरस्टार और करोड़पति गायिका गौहर जान की मौत तो आबा-ए-वतन से भी बहुत दूर हुई, जहाँ किसी अपने के हाथों से उन्हें मिट्टी तक नसीब न हुई!

गायन की कला से लोगों को हैरत में डाल देनेवाली गौहर जान हिंदुस्तान की पहली 'डांसिंग गर्ल' थीं और ग्रामोफोन पर अपने गायन को रिकॉर्डिंग करानेवाली पहली प'फॉर्मर होने का एजाज़ भी उन्हें ही हासिल है. दिसंबर 1911 में दिल्ली दरबार में 'प्रिंस ऑफ वेल्स' किंग जॉर्ज पंचम के राज्याभिषेक के अवसर पर गाने के लिए ग़ौहर जान को बुलवाया गया था, जहाँ इलाहाबाद की उनकी समकालीन जानकीबाई 'छप्पनछुरी' के साथ इस अवसर के लिए विशेष रूप से एक युगल गीत तैयार किया था, 'ये है ताज़पोशी का जलसा मुबारक हो, मुबारक हो'. यह गीत जब समाप्त हुआ, तो सम्राट और साम्राज्ञी को सलाम करने के लिए दोनों गायिकाएँ गौहर और जानकीबाई उनकी क़रीब गईं. सम्राट ने दोनों की कला की ख़ूब तारीफ़ें की और बतौर इनाम सोने की सौ अशर्फियाँ दीं. इस शानदार समारोह में सम्राट-साम्राज्ञी और तमाम रियासतों के राजाओं-महाराजाओं और ज़मींदारों की मौज़ूदगी में गौहर जान को जानकीबाई के साथ अपनी गायकी का जलवा दिखाने का एक दुर्लभ अवसर मिला था. गौहर की एक और ख़ास बात क़ाबिले-ग़ौर है कि लखनऊ की तवाइफ़ उमरावजान उर्दू में 'अदा' तख़ल्लुस से शेर कहती थीं. उर्दू शेरो-शायरी से गहरी दिलचस्पी होने की वज़ह से गौहर जान भी 'हमदम' तख़ल्लुस से ग़ज़लें और शेर कहा करती थीं. गौहर जान 'हमदम' का एक शेर अब भी उनकी गायकी की क़द्र करनेवालों की ज़ुबान पर रहता है, *'शायद कि याद भूलने वाले ने फिर किया/ हिचकी इसी सबब से है गौहर लगी हुई.'*

गौहर जान अपनी समकालीन जिन जानकीबाई 'छप्पनछुरी' को जीवनभर अपना प्रतिद्वंद्वी समझतीं रहीं, उन जानकीबाई का जीवन भी उपेक्षा, अपमान और संघर्ष की एक लंबी दास्तान है. सन् 1880 में बनारस में जन्मी जानकीबाई के पिता शिव बालकराम यादव बनारस के जाने-माने पहलवान थे और माँ मानकी गाने-बजाने का शौक रखती थी. मानकी का यह शौक शिवबालक को पसंद नहीं था, लिहाजा पत्नी और बेटी दोनों को छोड़कर शिवबालक ने दूसरी शादी करके अलग घर बसा लिया. मानकी ने बनारस का घर बेच दिया और जान-पहचान की एक महिला की मदद से इलाहाबाद आ गई, जिसने इलाहाबाद में उस ज़माने के एक मशहूर कोठे के मालिक के हाथों दोनों माँ-बेटी मानकी और जानकी दोनों को बेच दिया. कोठे के मालिक की मौत के बाद मानकी ने मालकिन बनकर कोठा चलाना शुरू कर दिया. एक दिन मानकी ने ग़ौर किया कि बेटी जानकी को संगीत में रुचि है, तो मानकी ने बेटी को मौसीक़ी सिखाने के लिए लखनऊ के उस्ताद हस्सू खाँ को रख लिया. नृत्य और संगीत के अतिरिक्त जानकी ने अँगरेज़ी, संस्कृत और फारसी भाषा भी सीखी. उर्दू शेर-ओ-शायरी का जानकीबाई को ऐसा चस्का लगा कि उसने शेर कहना शुरू कर दिया और अशआर की तादाद ज़्यादा होने पर इलाहाबाद के असरारे करीमी प्रकाशन से 'दीवान-ए-जानकी' उन्वान से एक मजमुआँ यानी संग्रह भी छपा.

जानकीबाई के नाम के साथ 'छप्पनछुरी' जुड़ने की दास्तान बेहद तक़लीफदेह है. उनके दाग़दार और बुरे चेहरे के बारे में दो कहानी कही-सुनी जाती है. एक कहानी यह कि एक मनचले के प्रेम-प्रस्ताव को जब जानकीबाई ने ठुकरा दिया, तो उसने छुरी से छप्पन दफा वार करके जानकी की सूरत बिगाड़ दी. दूसरी कहानी यह कही

जाती है कि जानकीबाई ने एक बार अपनी सौतेली माँ लक्ष्मी को अपने प्रेमी के साथ प्रणय-केलि करते हुए देख लिया, जिससे क्रोधित होकर सौतेली माँ के प्रेमी ने जानकी की ऐसी गत बना दी. बहरहाल, इस वज़ह से जानकी की आवाज़ जितनी मधुर और कर्णप्रिय थी, उसी अनुपात में उनकी सूरत उतनी ही बिगड़ चुकी थी. जानकी की समकालीन तवाइफ़ें जहाँ अपनी गायकी के अतिरिक्त ख़ूबसूरती की वज़ह से राजदरबारों में शोहरत पा रही थीं, वहीं जानकी ने मात्र अपनी आवाज़ और गायकी के दम पर कामयाबी की ऐसी बुलंदी हासिल की, जिसके बाद ग्रामोफोन कंपनी उनके रिकार्ड का एक संस्करण कम-से-कम 25 हज़ार का निकालती थी. जानकीबाई के नाम यह एक ऐसा रिकॉर्ड था, जिसने उन्हें सुपरस्टार बना दिया था.[7] इलाहाबाद के अतरसुइया थाने पर आयोजित हुए एक कार्यक्रम में जानकीबाई ने मशहूर गायिका गौहर जान को मुकाबले में हराया था. सत्रह हज़ार चाँदी के सिक्कों से मंच पट गया था. आज के चैनल युग के बग़ैर जो लोकप्रियता जानकीबाई ने उन दिनों पायी थी, वह सदियों में किसी कलाकार को नसीब होती है. लेकिन ज़िंदगी ने उन्हें उतने ही ग़म दिये, जितनी खुशी उन्हें संगीत ने दी.

जानकीबाई की शादी इलाहाबाद के एक वकील शेख़ अब्दुल हक से हुई थी, लेकिन शादी के बाद जानकी ने ग़ौर किया कि वकील साहब उनके साथ धोखा कर रहे हैं, लिहाजा कुछ साल बाद ही जानकीबाई वकील शेख़ अब्दुल से तलाक लेकर अलग हो गईं. इस तलाक से जानकी को ऐसा सदमा लगा कि भौतिक सुखों से उन्हें विरक्ति हो गई. उसके बाद उन्होंने अपने नाम पर एक धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना की, जो अभी भी इलाहाबाद में मौज़ूद है. जानकी ने अपनी अर्जित अपार संपत्ति और ग्रामोफोन रिकार्डिंग कंपनी से प्राप्त धन से ज़रूरतमंद छात्रों को आर्थिक मदद देतीं ग़रीबों के बीच कंबल बाँटती, मंदिरों-मस्जिदों को दान देतीं और भूखे-प्यासे लोगों के लिए सदाव्रत चलवातीं.[8] 18 मई, 1934 को शहर इलाहाबाद में जब जानकीबाई ने इस दुनिया को अलविदा कहा, तो उनके पास उस वक़्त कोई अपना, कोई क़रीबी मौज़दू नहीं था!

सन् 1887 में अमेरिका के वाशिंगटन डीसी में रहने वाले जर्मन मूल के इमाएल बर्लिनर आवाज़ को रिकार्ड करके उसे सुरक्षित रखने और बाद में कभी भी सुनने की तकनीक का आविष्कार करने में अंततः सफल रहे. ठीक दो बरस बाद इस तकनीक के व्यावसायिक इस्तेमाल और रिकार्डिंग करके रिकॉर्डेड प्लेट्स बेचने के लिए सन् 1897 में बर्लिनर ने 'द ग्रामोफोन कंपनी' नाम से एक कंपनी बनाई. इसी कंपनी ने बीसवीं सदी के पहले दशक की शुरुआत में अपने एजेंट फ्रेडरिक विलियम गैसबर्ग को व्यावसायिक संभावना की तलाश करने के लिए हिंदुस्तान भेजा. गैसबर्ग ने उन दिनों हिंदुस्तान की सबसे मशहूर गायिका ग़ौहर जान को ग्रामोफोन कंपनी के लिए गाने का प्रस्ताव दिया. शास्त्रीय संगीत को महज तीन मिनट में गाना और रिकार्ड कराने का काम बहुत चुनौतीपूर्ण और उलझन भरा काम था. इसी वज़ह से उस वक़्त के दिग्गज कलाकारों ने ग्रामोफोन कंपनी के एजेंट फ्रेडरिक विलियम गैसबर्ग के प्रस्ताव पर कंपनी के लिए गाने से मना कर दिया. हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत तो दूर, किसी भी भारतीय संगीत को तीन मिनट में गा देना बहुत मुश्किल था. ऐसे में तीन मिनट के अंदर ठुमरी या ख़याल गा देने की चुनौती को गौहरजान ने स्वीकार किया. इसके एवज में ग़ौहर ने ग्रामोफोन कंपनी से पूरे तीन हज़ार रुपये की माँग की. इतना रुपया उन दिनों हिंदुस्तान में बहुत बड़ी रकम होती थी. रुपये की क़ीमत का अंदाज़ा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि उन दिनों हिंदुस्तान में उन्नीस रुपये में एक तोला सोना मिलता था.

बहरहाल, हिंदुस्तान में गौहर जान की लोकप्रियता को देखते हुए फ्रेडरिक गैसबर्ग ने इतनी भारी रकम की माँग मान ली और रिकॉर्डिंग की तैयारी करने के लिए भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता चले गए.

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में 02 नवंबर, 1902 वह तारीख़ है, जिस दिन गौहर जान ने कलकत्ता के ग्रेट ईस्टर्न होटल (जो आजकल 'द ललित ग्रेट ईस्टर्न' कोलकाता के नाम से जाना जाता है) में अस्थायी रूप से बनाए गए स्टुडियो में राग जोगिया में तीन-चार मिनट में ख़याल गाकर उसे रिकॉर्ड करवाया. इस रिकार्डिंग के साथ ही हिंदुस्तान ही नहीं, पूरे दक्षिण एशिया के इतिहास में गौहर जान पहली ऐसी गायिका बन गईं, जिनके गाने से रिकार्डिंग की शुरुआत हुई. उनके गाने की रिकार्डिंग होने के कारण ही आज गौहर के गाने लोगों को उपलब्ध हैं. कहते हैं कि गौहर जान अपनी हर रिकॉर्डिंग के लिए नए कपड़े और ज़ेवर पहनकर स्टुडियो आती थीं. दिलचस्प यह कि गाने की रिकार्डिंग करवाते समय जब गाना समाप्त हो जाता, तो वह आख़िर में बोलतीं, 'माय नेम इज ग़ौहर जान'. गाने के अंत में ऐसा बोलना दरअसल एक तकनीकी बाध्यता थी. क्योंकि गाने की रिकार्डिंग करने के बाद प्लेट्स बनाने के लिए उसे जर्मनी के हनोवर भेजा जाता था. वहाँ तकनीशियन गाने को सुनते, प्लेट्स बनाते और अंत में उस कलाकार का नाम सुनकर उस कलाकार के नाम का लेबल प्लेट्स पर लगा देते. उसके बाद हिंदुस्तान के बाज़ारों में बिकने के लिए रिकॉर्ड्स भेज दिये जाते. इस प्रक्रिया से गुज़रकर प्लेट्स को हिंदुस्तान के बाज़ारों में आने में तकरीबन साल भर का वक़्त लगता और गौहर जान के गानों के नये रिकार्ड्स आने की ख़बर फैलते ही बाज़ार में ख़रीदारों की भारी भीड़ उमड़ पड़ती.

तवाइफ़ें उस दौर के रजवाड़ों, नवावों और रईसों की शान-ओ-शौकत का पैमाना हुआ करती थीं. मसलन गौहर जान, ज़ोहराबाई, अल्लाजिलाई, जद्दनबाई-जैसी तवायफ़ों को शादी-ब्याह या किसी अन्य माँगलिक अवसर पर गाने लिए बुलवाना समाज में शान की बात समझी जाती थी. अज़ीमाबाद के पश्चिम में आधुनिक चौहट्टा के सुनसान इलाके में तवाइफ़ों ने आकर बसना शुरू कर दिया, जहाँ अज़ीमाबाद के शरीफ़ घरों के नौजवान आम लोगों की नज़रें बचाकर पहुँचने लगे. फिर तो आज के खजाँची रोड से लेकर मुसल्लहपुर भट्ठी तक तवाइफ़ों का मुहल्ला गुलज़ार हो गया. जहाँ आज दरभंगा हाउस है, वहाँ नवाबों के द्वारा बनवाए गए 'डांसिंग हॉल' में उस दौर की महँगी और मशहूर तवाइफ़ें आकर नाचती थीं. सन् 1850 के आसपास पटना सिटी के नवाब सैयद इब्राहीम हुसैन खाँ ने अपने साले की शादी में पाँच दिनों तक नाच-गाने का आयोजन किया था. अनेक शहरों से तवाइफ़ें बुलवाई गई थीं. कलकत्ता और दिल्ली से एक सौ से ऊपर अँगरेज़ हाकिम तवाइफ़ों का नाच-गान देखने के लिए आए थे-कुर्ता, पाज़ामा और टोपी पहनकर. उस दौर के पटना में जस्टिस सर्फुद्दीन और सर अली इमाम का बड़ा नाम था. जस्टिस सर्फुद्दीन ने अपने इकलौते बेटे सैयद अहमद सर्फुद्दीन की शादी में दो दिनों तक सदर गली में तवाइफ़ों की महफिल सजवाई थी. धौलपुर कोठी में बाबू कृष्णा की शादी में जो तवाइफ़ों की महफ़िल सजी थी, वह पटना के बड़े महफिलों में से एक थी.[9]

अज़ीमाबाद यानी पटना में तवाइफ़ों की संस्कृति को गहराई से समझने के लिए थोड़ा अज़ीमाबाद की तारीख़ से रू-ब-रू होना पड़ेगा. सन् 1702 में मुग़ल बादशाह औरंगजेब के पोते अज़ीमुश्शान को बिहार का गवर्नर नियुक्त किया गया और 1704 में उसने पटना का नाम अज़ीमाबाद रख दिया. अज़ीमुश्शान एक दशक तक पटना का गवर्नर रहा और इस दौरान उसने इस शहर को सुंदर बनाने के लिए तकरीबन एक करोड़ रूपये खर्च किये.

उसके बाद पटना के सौंदर्य, वहाँ मिलनेवाली सुविधाएँ और दौलत से भरपूर लोगों की चर्चा हिंदुस्तान के अनेक रियासतों में होने लगी. जिसकी वज़ह से एक-से-एक नामी गायक-वादक और अदीब शहर अज़ीमाबाद का रुख करने लगे. बड़ी कनीज़, मोहम्मद बाँदी, ज़ोहराबाई आगरेवाली, अल्लाजिलाई, बी रमजो, बी छुट्टन ने अज़ीमाबाद की रौनक बढ़ाई. लखनऊ से चौधराइन बचवा और मुस्तफा हुसैन भांड का दल तथा जयपुर की गौहर बाई का नाम पटना के लोगों का मनोरंजन करने वालियों में शुमार है. गायिकी में ज़ोहराबाई के टक्कर की गायिका उन दिनों बहुत कम थी.

संगीत की दुनिया में ज़ोहराबाई आगरेवाली (1868-1913) का नाम और काम दोनों बेमिसाल है. एच.एम.वी. यानी 'हिज मास्टर्स वॉयस' ने सन् 1902 में ग़ौहर जान से भारत में रिकार्डिंग की शुरुआत की थी, लेकिन ज़ोहराबाई को एच.एम.वी. ने सन् 1908 से रिकार्ड करना शुरू किया. 'क्लासिक गोल्ड कैसेट ऑफ ज़ोहराबाई' के कार्ड नोट पर ज़ोहराबाई के बारे में लिखा गया है, 'ज़ोहराबाई उस युग की एक महान गायिका थीं, जब रिकॉर्डिंग की कला भारत में शुरुआती दौर में थी. ज़ोहराबाई दरअसल ख़ुदमुख़्तारी का दूसरा नाम थीं. एक शाही शादी समारोह में उनका उन दिनों की एक प्रसिद्ध गायिका के साथ झगड़ा हो गया. उसके बाद ज़ोहराबाई छह साल के लिए आत्म-निर्वासन में चली गईं. इस अवधि के दौरान वह एक गाँव में रहीं और आगरा घराने के उस्ताद शेर खान से संगीत का कठोर प्रशिक्षण लिया. ज़ोहरा ने उनसे मंच पर गायन की बारीक-से-बारीक पहलुओं को सीखा. उसके बाद नई ज़ोहराबाई एकदम बदली हुई, एकदम निखरी हुई अलग शख़्सियत के रूप में दुनिया के सामने आईं. उनके गाने का एक अलग ही ढंग था-वह बहुत ताक़त लगाकर मर्दाना अंदाज़ में थोड़ा आक्रामक तरीके से गाती थीं-कुछ-कुछ गंगूबाई हंगल की तरह. उनके प्रशंसकों की फेहरिस्त बड़ी लंबी है, जिनमें उनकी समकालीन तवाइफ़ गौहर जान से लेकर किराना घराना की मशहूर गायिका गंगूबाई हंगल तक का नाम शामिल है.'[10] ज़ोहराबाई दरअसल ख़याल के साथ-साथ ठुमरी और ग़ज़ल गायकी के लिए जानी जाती थीं, जिसकी बहुत सारी बारीकियाँ उन्होंने ढाका के उस्ताद अहमद खाँ से सीखी थी. उनके गायन की शैली ने आगरा घराने के उस्ताद फ़ैयाज खाँ को भी बेहद प्रभावित किया और पटियाला घराने के उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ तो उनका सबसे ज़्यादा सम्मान करने वालों में से थे.

ज़ोहराबाई ने अपने आपको बहुत कठोर प्रशिक्षण से तैयार किया था, इसलिए ज़ोहरा के गायन में वैविध्य बहुत है. सन् 1985 में अपनी माँ के साथ संगीत के प्रशिक्षण लेने के लिए ज़ोहरा जब शहर दरभंगा पहुँची थी, तो उस वक़्त वह बहुत छोटी थी. साँवली, छरहरी और बड़ी-बड़ी आँखों वाली जोहराबाई ने बाद में अपनी माँ के साथ पटना का रुख़ किया और पटना कॉलेज के पास आकर रहने लगी. सन् 1900 ईस्वी के आसपास कुछ लड़के उसके कोठे पर संगीत सुनने के लिए पहुँचे. उन लड़कों की सूरत देखकर ही ज़ोहराबाई पहचान गई कि ये पटना कॉलेज में पढ़ने वाले शरीफ घरों के लड़के हैं. उन लड़कों का आवभगत करने के बाद उनके कोठे पर आने का कारण पूछा. छात्रों ने बेताब होते हुए कहा कि वे लोग उनका गाना सुनने के लिए आए हैं. उसके बाद ज़ोहरा तैयार होने के लिए भीतर चली गईं और अपने साज़िंदों से भी तैयारी करने को कहा. दो घंटे तक उन्होंने लड़कों को गाना सुनाया और रुख़्सत करते हुए यह हिदायत दी कि अब फिर कभी किसी कोठे का रुख न कीजिएगा. बाद में पटना के मछरहट्टा में ज़ोहराबाई ने एक आलीशान कोठी बनवाई. ज़ोहरा को शाह अकबर साहब

दानापुरी से गहरा लगाव था, लेकिन वह बीवी बनी किसी और की. किसी बीमारी की वज़ह से ज़ोहरा का फेफड़ा ख़राब होने लगा और धीरे-धीरे जिंदगी की डोर कम होने लगी थी. यही उसी मौत की वज़ह भी बनी. औलाद के नाम पर एक ही बेटी थी, जो हैजा के चपेट में आकर मर गई.[11] ज़ोहराबाई के गाए मशहूर गीतों में से एक 'प्रेम जोगन बन' जब रिकार्ड हुआ, तब उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ साहब पैदा ही हुए थे. ज़ोहराबाई को बदनाम करने की नीयत से लोगों ने यह अफ़वाह फैलायी कि अपने से उम्र में बहुत छोटे फ़ैयाज़ खाँ साहब के साथ ज़ोहारबाई के 'ताल्लुक़ात' हैं, जिनको ज़ोहरा प्यार करती थीं.

ज़ोहरा की 'कहन' ऐसी दिलकश होती थी कि उनकी एक 'बोल' पर ठुमरी के उस्ताद और विख्यात हारमोनियम वादक भैयासाहब गणपतराव ऐसे मुग्ध हुए कि गंडा बँधवाकर शागिर्द बनने पर उतारू हो गए. मियाँ अली क़दर के तबले के बोल तथा उस्ताद बहादुर हुसैन खाँ की सारंगी की खनक से उनकी ठुमरियों में चार चाँद लग जाते थे. ज़ोहराबाई ग़ज़लें गाने में भी महारत रखती थीं. क्या रुतबा और शानो-शौकत थी ज़ोहरा की, कि बड़े-बड़े ख़ानदानी गवैये तक उन्हें सुनने के लिए मचल उठते थे. ज़ोहरा की बदौलत संगीत की दुनिया में पटना का बड़ा नाम था.'[12] आम तौर पर लोग ऐसा मानते हैं कि उस दौर की तवाइफ़ें कव्वाली, ग़ज़लें और नज़्में गाती थीं या कोई ऐसा गीत, जिससे टूटे दिल वाले निराश और हताश लोगों के दिल को करार मिले. मग़र ज़ोहराबाई ने अपनी गायकी से तवाइफ़ की इस छवि को तोड़ा. वे ग़ज़ल, नज़्म गाने के साथ-साथ भक्तिपरक गीत गाने वाली अपने दौर की अकेली गायिका थीं. बेहद अफ़सोस की बात है कि मर्दाना आवाज़ की मलिका ज़ोहराबाई की कुल 78 रिकार्ड को ही बचाया जा सका. बाकी रिकार्ड अब कहाँ हैं, किनके संग्रहालय में सुरक्षित हैं, यह आज शायद ही किसी को मालूम हो.

सन् 1935 में सत्रह-अठाहर बरस की अल्लाजिलाई नामक बेहद ख़ूबसूरत और मधुर आवाज़ की धनी तवाइफ़ शहर इलाहाबाद से आकर पटना सिटी में बसी थी. थोड़े ही समय में अल्लाजिलाई ने अपनी कला ऐसा प्रदर्शन किया कि पूरा पटना शहर उस पर फिदा हो गया. गली-गली में लोगों के बीच उसके चर्चे होने लगे. बड़ी-बड़ी कोठियों में रहने वाले ज़मींदारों, नवाबों के बीच जब इलाहाबाद से आकर पटना सिटी में नये कोठे के मालकिन बनी अल्लाजिलाई की चर्चा पहुँची, तो कई क़िस्से बनने और हवा में उड़ने के लिए जैसे तड़फड़ाने लगे. लोग आते और घंटों वाह-वाह किया करते. खुले हाथों से दौलत लुटाया करते. इससे अल्लाजिलाई को इलाहाबाद छोड़कर पटना आने के अपने फ़ैसले पर फ़ख्र होता. अल्लाजिलाई के आत्म-सम्मान और स्वभाव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसने अपने क़द्रदानों से कभी कुछ नहीं माँगा, लेकिन उसकी महफ़िल में आकर दौलत लुटाने वाले बहुतेरे थे. जिस वज़ह से कम हैसियत के लोगों अल्लाजिलाई की महफ़िल में जाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी. अल्लाजिलाई का कोठा इतना आलीशान था कि उसका घर कश्मीरी सनमाइका, हाथी दाँत, बेल्जियम के बने पाँच सौ कमलनुमा झाड़, चाँदी के आईने, गमले और गुलदान आदि बहुमूल्य सामग्रियों से सुसज्जित था. रोम और ईरान की बनी कालीनें, मखमल के पर्दे आदि लगे होने के कारण अद्भुत भव्यता झलकती थी. ये सारी चीज़ें उसकी सुंदरता पर मोहित होकर गुज़री के एक नवाब ने दी थी. पटना की कोई भी महफ़िल उन दिनों अल्लाजिलाई के बग़ैर सजती ही नहीं थी. दो-तीन वर्षों के भीतर बिहार के अनेक ज़मींदारों के यहाँ अल्लाजिलाई के रूप और गायकी क़िस्से पहुँच चुके थे, लेकिन दुर्भाग्य से महज चौबीस साल की उम्र में

ही उसका निधन हो गया. पटना सिटी के मख़्दूम शहाबुद्दीन के मज़ार (कच्ची दरगाह) के पास अल्लाजिलाई नामक इस तवाइफ़ का संगरमरमर का मकबरा आज भी देखा सकता है.[13]

सन् 1875 की बात है. पटना के त्रिपोलिया के पास हफ्तख़ाना या कहें सतघरवा में एक तवाइफ़ बी छुट्टन रहती थी. हफ़्ताखाना में एक-दूसरे से बिल्कुल सटे हुए एक ही ढंग के सात मकान बने हुए थे, इस वज़ह से उन मकानों को लोग सतघरवा कहते थे. सतघरवा के इन्हीं मकानों में बी छुट्टन के अलावा बी रमजो और बाकी और तवाइफ़ें रहती थीं. शाम को झरोखे में बैठकर नीचे के लोगों को देखा करती थीं और नीचे के लोग उनको देखा करते थे. झरोखे के नीचे पान की दुकान पर माल-ओ-दौलत के मुआमले में तकरीबन बरबाद हो चुके एक ज़मींदार के चौदह-पंद्रह साल की उम्र का बेटा अली अहमद झरोखे के नीचे खड़े होकर बी छुट्टन को देखा करता. वह रोज़ शाम को आता और सतघरवा के जिस घर में बी छुट्टन रहती थी, उस घर के झरोखे के नीचे पान की दुकान के पास खड़े होकर बी छुट्टन के रूप का दीदार करना उसका रोज़ का काम हो गया. इस तरह जब कई दिन हो गए, तो बी छुट्टन को किसी ने बताया कि एक नवाबज़ादे रोज झरोखे के नीचे आते हैं और आपको मुसलसल देखा करते हैं. एक दिन अपने किसी मुलाज़िम या मुलाज़मा को भेजकर बी छुट्टन ने अली अहमद नामक उस नवाबज़ादे को अपने कोठे पर ऊपर बुलवाया. बहुत ख़ूलूस से बिठाया और कहा, 'मियाँ आप आ गए! आपकी बड़ी मेहरबानी. मैं रोज़ आपको दूर से देखा करती थी और आपकी तरफ़ खिंची चली जाती थी. आख़िरकार मुझसे रहा नहीं गया और मुझे आपको अपने पास बुलाना ही पड़ा. अब आ ही गए हैं, तो झिझक छोड़िए और कुछ अपनी सुनाइए, कुछ मेरी सुनिए. बात ऐसे ही तो बनती है!'[14]

बी छुट्टन ने इस ढंग से नवाबज़ादे अली अहमद से बातें की, कि जब वे मुतमइन हो गए कि उनकी इश्क़बाजी की ख़बर उनके घर तक नहीं पहुँचेगी, तो ज़नाब ने दिल की गठरियों को खोलना शुरू किया. बी छुट्टन ने उनको रोज़ नीचे से मुसलसल देखे जाने का जब सबब पूछा किया, तो ज़नाब ने कहा कि वे बी छुट्टन पर फ़िदा हैं. उनसे मोहब्बत हो गई है! बी छुट्टन को नवाबज़ादे की इस बात से थोड़ी हैरत हुई, क्योंकि उम्र के मुआमले में बी छुट्टन और अली अहमद के बीच तकरीबन बारह-तेरह साल का फ़ासला था. मियाँ अली अहमद से तफ़सील जानने के बाद मालूम हुआ कि ज़नाब कैवाशिकोह में रहते हैं. वालिद का इंतकाल हो चुका है. उनसे बड़ी दो बहने थीं, जो अब हयात नहीं हैं. वालिद का इंतकाल होते ही चचा ने जायदाद का ज़्यादातर हिस्सा अपने क़ब्जे में कर लिया. थोड़ी-सी ज़मींदारी बच गई है, शहर में चार छोटे-छोटे मकान और दुकान हैं, जिनका किराया आता है. किरायेदार भी वक़्त पर किराया नहीं देते. बस इसी तरह घर चल रहा है. बी छुटट्न ने जब उनकी पढ़ाई-लिखाई के बाबत पूछा, तो ज़नाब ने बताया कि थोड़ी उर्दू-फारसी घर पर पढ़ी है. दो साल पहले स्कूल में दाख़िला करवाया था. मोगलपुरा में रिश्ते के मामूँ रहते हैं, वही कभी-कभार आकर ख़ैरियत ले लेते हैं. स्कूल में भी लोकल गार्जियन वही हैं. चूँकि वे ख़ुद ही एक नवाब साहब के यहाँ मुलाज़मत करते हैं, इसलिए ज़रा मसरूफ रहते हैं. बराबर मिलने नहीं आ पाते हैं. अली अहमद साहब की रुदाद सुनने के बाद बी छुट्टन ने मुहब्बत की ऐसी मिसाल पेश की, जिसकी कोई दूसरी मिसाल मुहब्बत की तारीख़ में नहीं मिलती. बी छुट्टन ने न केवल अली अहमद को अपने खर्चे से पढ़ाया-लिखाया, बल्कि उनकी वालिदा की पसंद की लड़की से शादी भी करवाई. लॉ की पढ़ाई करवा कर अली अहमद साहब को नामी वकील बनवाया और यह सलाह दी कि वे पटना की बजाए कलकत्ता में रहें और वहीं अपना घर बसाएँ.

विदेशी व्यापारियों और विदेशी सैनिकों के पटना आने-जाने के कारण ज़ोहराबाई, अल्लाजिलाई, बी छुट्टन, बी रमजो जैसी जिन तवाइफ़ों ने कभी जिन इलाकों को बाज़ार-ए-हुश्न बना रखा था, वे इलाके धीरे-धीरे अपनी अपनी ढलान की ओर जाने लगे. सन् 1900 ईस्वी के बाद चौहट्टा के आसपास बहुत तेज़ी से आबादी बढ़नी शुरू हुई. पटना कॉलेज और उसके आसपास रहने वाले लोगों ने इस इलाके में तवाइफ़ों के घर होने पर एतराज़ करना शुरू कर दिया. तवाइफ़ों को इस इलाके से हटवाने के लिए लोग इस मुआमले को लेकर पटना हाई कोर्ट चले गये. अदालत में ज़िरह के मैदान में दलीलों के ज़िरह-बख़्तर पहनकर नामी वकील उतरे. महीनों तक लंबी बहसें चली. आख़िरकार सन् 1935 में पटना हाई कोर्ट में तवाइफ़ें अपना मुकद्दमा हार गईं. उसके बाद उनको इस इलाके से हटाकर पटना सिटी भेज दिया गया.[15] जिन तवाइफ़ों के रहने से इस इलाके की आलीशान इमारतें कोठे के रूप में जानी जाती थीं, वे तमाम इमारतें अब फिर से कोठी में तब्दील की जाने लगीं. शरीफ़ज़ादों और नवाबज़ादों के रहने के लायक होने लगीं. सन् 1913 में ही ज़ोहराबाई अल्लाह को प्यारी हो चुकी थी और 1930 में ग़ौहर जान का भी अपने आबा-ए-वतन से दूर मैसूर में इंतकाल हो चुका था. सन् 1800 में जो बाज़ार-ए-हुश्न पटना में बसा था, वह 1935 तक आते-आते उजड़ गया. इन तवाइफ़ों के साथ ही तहज़ीब और मौसिकी के ठिकानों का भी धीरे-धीरे इंतकाल हो गया. अब रह गये हैं उनके क़ब्रों के कुछ निशां और कुछ पुराने बुजुर्गों की यादों में बसी वे दास्तानें जो कहीं-कहीं दर्ज़ तो हुई हैं, मगर ज़्यादातर बेचैन रुह अफ़साने आज भी पटना सिटी की गलियों में अपने अफ़सानानिग़ारों बड़ी बेकली से ढूँढ़ती हैं. इस ग़म-ए-दुनिया ने ग़र थोड़ी भी मोहलत दी, तो आगे कोशिश रहेगी कि इन अफ़सानों को रोने के लिए एक कंधा मुहैया करा सकूँ और काग़ज पर आहिस्ता-आहिस्ता उतरने के लिए सुकून चंद लम्हे भी! आमीन.

***

संदर्भ

[1] पाण्डेय, मृणालः https://www.bbc.com/hindi/india/2016/04/160418_courtsean_series_part_4_pk
[2] मुबारकः www.thelallantop.com, Feb. 15, 2018
[3] Henningham, Stephen: A Great Estate and Its Landlords in Colonial India: Darbhanga 1860-1942, OUP, 1990
[4] पाण्डेय, मृणालः https://www.bbc.com/hindi/india/2016/04/160418_courtsean_series_part_4_pk
[5] Sampath, Vikram: The romance of Gauhar Jaan, live mint,16 April, 2010
[6] भारद्वाज, अनुरागः https://satyagrah.scroll.in, October 07, 2019
[7] Sampath, Vikram: https://theprint.in, 2 June, 2019
[8] ibid
[9] प्रसाद, ओमप्रकाशः बिहारः एक ऐतिहासिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 298
[10] https://www.parrikar.org/vpl/?page_id=846
[11] प्रसाद, ओमप्रकाशः बिहारः एक ऐतिहासिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 298
[12] रंजन सूरिदेव-प्रभाकर प्रसादः पाटलिपुत्र की धरोहर-रामजी मिश्र 'मनोहर', मोतीलाल-बनारसीदास, 1998, पृ. 63
[13] प्रसाद, ओमप्रकाशः बिहारः एक ऐतिहासिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 298
[14] सिंह, अरुणः लोकमत दीप भव 2019, अंक-9
[15] प्रसाद, ओमप्रकाशः बिहारः एक ऐतिहासिक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 298

-हिंदी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़-202002 (उत्तर प्रदेश.
फोन-8218785993